Shodhaamrit, Vol.-2; Issue-2 (July-Dec.) 2025 : Page No.-228-233

शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-2 (July-Dec.) 2025
Page No- 228-233

©2025 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

डॉ. विभा कुमारी
सहायक प्राध्यापक,
पटना विश्वविद्यालय, पटना.

Corresponding Author :
डॉ. विभा कुमारी
सहायक प्राध्यापक,
पटना विश्वविद्यालय, पटना.

वेद एवं उपनिषद में निहित मूल्य शिक्षा

परिचय : शिक्षा समग्र रूप से मूल्यों को विकसित करने की एक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति को संतोषजनक जीवन जीने के लिए तैयार करती है। समाज के पोषित मूल्यों ओर आदर्शों के अनुसार ही व्यक्ति अपने कर्तव्यों का निर्वहन सही तरीके से कर पाता है। भारत मूल्यों को सँजोने की पावन भूमि रहा है। यहाँ मूल्यों को विकसित करने का महत्त्व सदियों से चला आ रहा है। इसे विकसित करने में सभ्यता और सांस्कृतिक विरासत के रूप में प्राचीन ग्रंथों की बहुत बड़ी भूमिका रही है। प्राचीन धार्मिक ग्रंथ, समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को कई मायनों में उन सभी मूल्यों की नींव और स्रोत का प्रतीक माना जाता है जिससे हम अपने मूल्यों का पोषण प्राप्त करते हैं। प्राचीन ग्रंथों में वेद और उपनिषद् को ऐसा माना जाता है की संसार में जितनी भी ज्ञान, विज्ञान, कलाएं हैं, सबका आदिस्रोत यही है। सृष्टि के आरंभ में मनुष्यों का पथ –प्रदर्शन वेदों के द्वारा ही हुआ था। वेद सभी विद्याओं का मूल होने के कारण प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय के लिए भी उपयोगी है एवं आगे आने वाले समय में भी यह व्यक्ति का पथ –प्रदर्शन करतें रहेंगे।

मुख्य शब्द : मूल्य शिक्षा, वेद, उपनिषद, ब्रह्म ज्ञान।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता : भारत अपनी कला, संस्कृति, दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर सदैव गर्व करता रहा है। इन सभी में निहित मूल्यों के कारण ही इसे धर्मगुरु की उपाधि से विभूषित किया गया है। परंतु वर्तमान में इसी धर्मगुरु भारतवर्ष के बच्चे पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर उसका अंधानुकरण कर रहे हैं। इस क्रम में वे अपनी गौरवशाली संस्कृति को भूलते जा रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप उनके सामाजिक एवं शैक्षिक मूल्यों का लगातार ह्रास हो रहा है। मूल्यों का ह्रास होने के कारण लोगों के लिए यह चिंता का विषय बन गया है तब ऐसे समय में 'मूल्य शिक्षा' की आवश्यकता प्रासंगिक हो जाती है। क्योंकि मूल्य शिक्षा ही जीवन को सार्थक बनाते हैं। मूल्य शिक्षा ही मनुष्य के मन में विश्वास, श्रद्धा, प्रेरणा, उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य भावना आदि उत्पन्न करते हैं। सृष्टि के प्रारंभ से ही धर्म एवं दर्शन के उद्देश्य में निहित मूल्य का लक्ष्य लोगों को बेहतर जीवन जीने के लिए मार्गदर्शन करना है। इसके लिए वेदों और उपनिषद द्वारा प्रदत्त

मूल्य को फिर से अपनाकर मनुष्य जीवन का समुचित अर्थ, आकर्षण एवं उत्कृष्ट मार्गदर्शन प्राप्त कर उचित लाभ उठा सकते हैं।

वेदो का महत्व : भारत की धार्मिक परंपरा चारों वेद - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद को परमात्मा का अनादि ज्ञान माना जाता है जो सृष्टि के आरंभ में मानव जाति के हितार्थ ऋषियों के माध्यम से दिया गया था। ऐसा माना जाता है की प्राचीन भारतीय ऋषियों को ध्यानमग्न अवस्था जो दिव्य अनुभुति हुई, वही वेद मंत्रों के रूप में अभिव्यक्त हुई। इन मंत्रों में विभिन्न देवताओं की स्तुतियाँ, ज्ञान – विज्ञान, कर्मकांड, दर्शन, आयुर्वेद, वास्तुकला आदि सभी विद्याएं शामिल हैं। प्राचीन साहित्य के रूप में वेद की महत्ता इन्ही विद्याओं से पता चलता है और इसे जानने के पूर्व हमे यह जानना आवश्यक है की वेद क्या है ? वेद शब्द "विद् " धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है - ज्ञान, विचार, सत्ता, एवं लाभ। अर्थात यह कह सकते हैं की "ज्ञान" का ही दूसरा नाम वेद है (वेद पारिजात, 2011)। इसका अंतर्गुढ़ ज्ञान ब्रह्मांड के विषय में सभी विचारों का स्रोत है, जो सदा अस्तित्व में रहकर सभी कालों में मनुष्य का मार्गदर्शन करता है। यह मनुष्य को उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति, उसके उपयोग के उपाय तथा अनेक अलौकिक प्रश्नोंका समाधान बताता है। मनुष्य के जीवन में खान –पान, आचार-विचार, उपासना पद्धति किस प्रकार की होनी चाहिए यह ज्ञान भी वेदों से प्राप्त होता है। वेद मनुष्य के जीवन को शुभ संस्कारों द्वारा सुसंस्कृत करने के लिए आवश्यक ज्ञान भी देता है। जैसा की यजुर्वेद के 32 वें अध्याय में कहा गया है 'यथेमांवाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्य'। अर्थात जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सबके लिए है, वायु सबके लिए है, ठीक उसी प्रकार वेद का ज्ञान सबके लिए है। इसका लाभ उठाकर मनुष्य जीवन को मूल्यवान बना सकता है।

वेदों में निहित विषय : वेदों में मंत्रों का संकलन है। इसमे कुछ मंत्र छन्दोबद्ध एवं कुछ गद्यात्मक हैं। छन्दोबद्ध मंत्रों को " ऋक् " कहते हैं।

"ऋक्" को ऋचा भी कहते हैं। ऋचाओं के संकलन वाले वेद को ऋग्वेद कहा गया है। ये ही मंत्र जब गेय होते है तब उन्हें "साम" कहा जाता है। सामों के संकलन को "सामवेद" कहा जाता है। गद्य – प्रधान वेद को यजुर्वेद कहतें हैं, जो यज्ञों के लिए प्रयुक्त होता है। स्तवन, गायन और यजन इन तीन प्रमुख विषयों के कारण क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, तथा यजुर्वेद का विभाजन किया गया है। इन्हें संयुक्त रूप से 'वेदत्रयी' कहते हैं। (वेद पारिजात 2011)

ऋग्वेद में निहित मूल्य शिक्षा : ऋग्वेद को हमारी पूर्वजों की सोच और ज्ञान की संग्रहशाला माना जाता है। इसमे संकलित मंत्रों के माध्यम से हमें भारत की विशाल संस्कृति, धार्मिक आचरण और भारतीय जीवनशैली का ज्ञान प्राप्त होता है। ऋग्वेद से मूल्य शिक्षा के रूप में यह जाना जाना जा सकता है की किसी भी कार्य को करने के पहले श्रद्धा की आवश्यकता होती है। बिना श्रद्धा के किया गया कार्य पूर्ण नही होता है। सामान्यतः श्रेष्ठता के प्रति अटूट आस्था को श्रद्धा कहा जाता है। यह मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को गहराई से प्रभावित करती है। ऋग्वेद वेद की ये सूक्तियाँ "संगच्छध्वं, संवदध्वम्, अक्षेर्मा दिव्याः कृषिमित्कृषस्वः"(ऋग्वेद – मण्डल 10, सूक्त 191, मंत्र 2) इत्यादि एकता, समता, दुर्व्यसन की निकृष्टता एवं कर्तव्य - निष्ठा का उपदेश देती है। इन सभी में श्रद्धा रखकर कार्य करने से ही सफलता मिलती है। इसके अलावा इसी प्रकार की जीवनोपयोगी अनेक उदात्त भावनाएं ऋग्वेद में उपलब्ध हैं। इसके अध्ययन से हमें अपने जीवन को धार्मिकता, न्यायपूर्णता, प्रेम, और सद्व्यवहार के मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है।

यजुर्वेद में निहित मूल्य शिक्षा : यजुर्वेद यज्ञ कर्म के लिए उपयोगी ग्रंथ हैं। गद्यात्मक भाग को यजुः कहा जाता है। यजुर्वेद में मुख्यतः आठ मंत्रों के द्वारा विभिन्न मूल्यों को दर्शाया गया है, जो इस प्रकार है - यजुर्वेद – संहिता का माध्यनंदिन – शाखा का यह प्रथम मंत्र पूर्णतः गद्यरुप में है। इसका प्रयोग कर्मकांड की दृष्टि से "दर्श – पूर्णमास " नामक यज्ञ में होता है। इस मंत्र में यज्ञकर्ता के आरोग्य, दीर्घायु तथा पशुओं की रक्षा के लिए प्रार्थना है। दूसरा मंत्र,"त्वं हि नो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती" सरस्वती मंत्र है (यजुर्वेद –अध्याय 36, मंत्र 11)। वेदों में सरस्वती की स्तुति की देवता के रूप में दो प्रकार से हुई है – पहला वाणी की देवी के रूप में तथा दूसरा नदी विशेष के अर्थ में। वाग्देवी सरस्वती सत्य तथा प्रिय वाणी के

लिए सबों को प्रेरित करती हैं। इसके साथ साथ वह सबको पवित्र भी करती है। इस दृष्टि से यहाँ उन्हे भावरूप देवता के रूप में भी बताया गया है। नदी के रूप में सरस्वती आर्यों के समस्त याज्ञिक कार्य – कलाप की अनुष्ठानस्थली के रूप में थी और उसके जल का प्रयोग अन्नोत्पादन में होता था (सरस्वती 1461)। तीसरा मंत्र राष्ट्रगीतम् के रूप में है। इस मंत्र में छोटे- छोटे वाक्यों के द्वारा राष्ट्रहित की कामना की गई है। इसका पाठ सभी कल्याण – कार्यों के अवसर पर किया जाता है। इसमें राष्ट्र की आवश्यकता के अनुरूप सभी व्यक्तियों, पशुओं तथा अन्य पदार्थों के उत्कर्ष की कामना की गयी है। चौथा मंत्र, स्वस्तिवानचम् है जिसमे स्वस्ति का अर्थ कल्याण से है। सु + अस्ति = सुन्दर स्थिति। किसी के कल्याण के लिए अथवा यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए जो मंत्र पथ होता है, उसे स्वस्तिवाचन कहते हैं। पाचवाँ मंत्र, पुरुष - सूक्त के महत्व के बारे में बताया गया है। इसमें पुरुष रूप परमात्मा से संसार की सृष्टि का प्रतीकात्मक वर्णन किया गया है। छठे मंत्र में, मेघा अर्थात् बुद्धि की अपरिमित शक्ति का वर्णन करते हुए अग्नि आदि विविध देवताओं से बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। सातवां मंत्र, शिवसंकल्पः है इसमे मन तथा कार्यों का वर्णन किया गया है। इनमें सभी मंत्रों के अंत में मन को कल्याणकारी बनाने की प्रार्थना की गई है। इसके लिए मन में उठने वाले संकल्प या इच्छाएं सदा शिव की ओर उन्नमुख होकर पापवृत्ति से हटने ओर धर्मवृत्ति में लगने का उपदेश दिया गया है। आठवां मंत्र, " ॐ द्यौः शांतिरन्तरिक्षं शान्तिः .." शांतिपाठः के रूप में है (यजुर्वेद – अध्याय 36, मंत्र 17)। इसमें यजुर्वेद – संहिता के छत्तीसवें अध्याय से चुने मंत्रों में विविध विषयों का वर्णन है। जैसे प्रथम मंत्र में बुद्धि को प्रेरणा देने के लिए सविता(सूर्य) से प्रार्थना की गई है। अन्य मंत्रों में इन्द्र आदि देवताओं की प्रार्थना करते हुए उनसे आशीर्वाद माँगा गया है जिससे निर्भयता, कल्याण तथा आरोग्य जैसे मूल्यों का लाभ प्राप्त हो सके।

सामवेद में निहित मूल्य शिक्षा : वैदिक काल में चारों वेदों में सामवेद संगीत का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए सामवेद को भारतीय संगीत का मूल कहा गया है तथा इस वेद को चारों वेदों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसका कारण यह है कि भाषा को भावपूर्ण बनाने के प्रयास में जो भी मंत्र बने उनमें से गद्य की अपेक्षा पद्य भाव में – संयोग एवं उभार की क्षमता अधिक पाई जाती है (सामवेद – 12. 1. 1) ये दोनों मिलकर एक पूर्ण और आकर्षक संगीत अनुभव प्रदान करते हैं इसका उद्देश्य ईश्वर को प्राप्त करना है। उदाहरण के तौर पर यह कहा जाता है की जिस तरह से चुंबक या विद्युत् की तरंगें अपना चक्र पूरा करती हैं, उसी प्रकार जैसा भाव तरंगें हम विश्व चेतना में छोड़ते हैं, उसी के अनुरूप भाव तरंगें किसी न किसी माध्यम से हम तक पहुँचती रहती हैं। इसका अनुभव हम सबको सामान्य जीवन क्रम में भी होता रहता है। यह अनुभव भी किया जाता है की गायन के द्वारा, पीड़ित हृदय को शांति और संतोष मिलता है। इससे मनुष्य की सृजन- शक्ति का विकास और आत्मिक प्रफुल्लता बढ़ती है। इस तरह के तत्वों की अनुभूति की समझ, वेद के प्रणेता ऋषि – महर्षियों द्वारा बहुत पहले ही कर ली गयी थी। मंत्र द्वारा ईश्वर प्राप्ति के लिए भक्ति –भावनाओं के विकास में गायन के योगदान को असाधारण माना गया है – "स्वरंती त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्तिथन....। " (ऋo 8.33 .2) अर्थात् इस मंत्र के द्वारा कहा गया है की " हे शिष्य ! तुम अपने आत्मिक उत्थान की इच्छा से मेरे पास आये हो। मै तुम्हें ईश्वर का उपदेश देता हूँ की जब भी तुम उसे प्राप्त करने के लिए संगीत के साथ पुकारोगे, तो वह तुम्हारी हृदय गुहा में प्रकट होकर अपना प्यार प्रदान करेगा।" सामवेद में इस तरह के मंत्र गान के लिए भी ऐसे ब्राह्मणों को योग्याधिकारी माना जाता था जो स्वाभाविक मधुर कंठ वाले उत्तम गायक, उत्तम वादक तथा उत्कृष्ट प्रबंधक हों, वेदों के ज्ञान में परिपक्च हों तथा वैदिक क्रियाओं में भी कार्यकुशल एवं निपुण हों। इन सब विशेषताओं के अतिरिक्त उनको मौखिक रूप से वेद ज्ञान की शिक्षा भी ग्रहण करना भी अनिवार्य था, अतः इसी उद्देश्य से यज्ञों व धार्मिक प्रयोजनों के लिए ब्राह्मणों को संगीत की विशेष शिक्षा दी जाती थी। यह शिक्षा पिता से पुत्र को, गुरु से शिष्य को अथवा गुरुकुल में विद्यार्थियों को सामूहिक रूप से दी जाती थी।

अथर्ववेद में निहित मूल्य शिक्षा : वेदों में अथर्ववेद का स्थान सबसे ऊपर है। जहां तीनों वेद परलोक का

फल देते है, वहीं अथर्ववेद इहलोक का फल देता है। जीवन को सुखी करने के लिए जिन साधनों की अपेक्षा की जाती है, उनकी सिद्धि के लिए इस वेद में अनेक अनुष्ठानों का विधान है। 'अथर्व '- शब्द की व्याख्या में अथर्व शब्द का अर्थ – अकुटिल वृति और अहिंसावृति से मन की स्थिरता को प्राप्त करने वाला होता है। अथर्ववेद के परिशिष्ठ में लिखा है की – जिस राज्य में अथवा राजा के जनपद में अथर्ववेद का ज्ञाता रहता है उस राष्ट्र में उपद्रवी आदि नहीं रहते हैं और वह राष्ट्र भी तीव्रता से वृद्धि करता है। (अथर्ववेद –प्रथमा काण्ड)

उपनिषदों में निहित मूल्य शिक्षा : उपनिषद् ज्ञान का मानसरोवर है। इसमें का अमरत्व का ज्ञान प्राप्त करके विश्व के समस्त मानव सुख और शांति प्राप्त कर सकते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थित, प्रलय, आत्मा, परमात्मा, परलोक, पुनर्जन्म, तथा मोक्ष आदि के रहस्य का यह ज्ञान एकांत, शांत तपोवनों में सिद्ध-पुरुषों व ऋषि – मुनियों के समीप बैठ कर प्राप्त किया गया था, इसलिए इसका नाम उपनिषद पड़ा। इसके द्वारा अज्ञान का विनाश ब्रह्म की ओर गति तथा जन्म–मरण के चक्र से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिए भी इसे उपनिषद कहते हैं। उप-निषदों की संख्या लगभग 108 है जिनमें से प्रायः दस से तेरह भागों को उपनिषदों को मुख्य उपनिषद कहा जाता है।

उपनिषद का पहला भाग ईशावास्योपनिषद् : इसमे ईश्वर को ही समस्त जगत् का स्वामी बताकर त्याग की भावना रखने, लोभ में पड़कर पराए धन की इच्छा ना करने तथा निरंतर सद्कर्म करते रहकर ही गुणवत्तापूर्ण सौ वर्षों जीने की इच्छा करने का आदेश दिया गया है (ईशावा स्योपनिषद्, 1997)। इसके साथ- साथ यह भी बताया है कि केवल कर्म अथवा केवल ज्ञान का आश्रय लेना ठीक नहीं है, अपितु ज्ञान एवं कर्म दोनों का समन्व्य ही श्रेयस्कर है। इसमें भगवान् से यह प्रार्थना की गई है – कि वह धन की प्राप्ति के लिए हमें अच्छे मार्गों पर ले जाए ओर हमे पापों से दूर रखे ।

दूसरे भाग केनोपनिषद् : इस भाग के मंत्रों में ब्रह्म के उपास्य तथा निर्गुण स्वरूपों का अंतर दिखाया गया है। उपास्य ब्रह्म से निर्गुण ब्रह्म ऊपर है। यह ब्रह्म रहस्यात्मक भी है। और इस उपनिषद में कहा गया है की इस शरीर में रहते हुए जो उस ब्रह्म को जान लिया उसे ही सुख की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं, और जो साधक परम्तत्व ब्रह्म को व्यवहार में उतार लेता है वह आनंदस्वरूप सर्वप्रिय परमात्मा का साक्षात्कार कर स्वयं भी आनंदमय हो जाता है। । इंद्रियादी – समूह को छोड़कर ही कोई इस ब्रह्म को पाकर, अमर बन सकता है। (केनोपनिषद्, 1992)

तीसरा भाग कठोपनिषद् : यह उपनिषद् यजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बद्ध है। इसमें यम और नचिकेता की मनोहर कथा द्वारा मानव – जीवन के कल्याण का रास्ता बताया गया है और आत्मा के स्वरूप का चित्रण करके उसकी प्राप्ति के उपाय का भी उल्लेख किया गया है। इसमे नचिकेता का आज्ञाकारी एवं आदर्श चरित्र बताया गया है। इसमें अज्ञान की निद्रा को त्याग कर जागने तथा श्रेष्ठ जनों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करने का उद् बोधन का उल्लेख है। कहा गया है की मनुष्य के समक्ष वास्तविक कल्याण अथवा मोक्ष तथा ऊपर से प्रिय लगनेवाला भौतिक उन्नति का मार्ग अथवा विचार – ये दोनों आते हैं परंतु बुद्धिमान व्यक्ति इन दोनों विषय को अच्छी तरह सोच – समझकर ही विवेचना करता है तथा इन दोनों मार्गों में से वह ऊपर से प्रिय लगनेवाले भौतिक सुख की अपेक्षा मोक्ष- साधन रूप कल्याणकारी मार्ग को ही चुनता है। किन्तु मूर्ख व्यक्ति भौतिक संपदा के रक्षण का मार्ग चुन लेता है। (कठोपनिषद्, 2008)

चौथा भाग प्रश्ननोपनिषद् : इसमें छः ऋषियों के प्रश्नों का समाधान पिप्पलाद ऋषि करते हैं। यहाँ संक्षिप्त रूप से इन प्रश्नों का तथा समाधान का वर्णन किया गया है। प्रथम ऋषि कबंधी का यह प्रश्न की – सृष्टि जो अनेक रूपों प्रवाहित हो रही है, इसका कारण क्या है और और यह कहाँ से उत्पन्न हो रही है। इसके निष्कर्ष में महर्षि द्वारा अक्षर ब्रह्म को ही जगत् का आधार बताया गया है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में समस्त इंद्रियों की अपेक्षा 'प्राण' की श्रेष्टता बतलायी गई है। प्राण के रहस्य को जानकर उपासना करने से ब्रह्मलोक में कर्ममुक्ति मिलती है। तीसरे प्रश्न में प्राण की उत्पत्ति और स्थिति पर विचार किया गया है। वहीं पर ये भी कहा गया है की मृत्यु के समय मनुष्य के संकल्प के अनुसार यह प्राण उसे भिन्न- भिन्न लोक में

ले जाता है और उपासक की उपासना के अनुसार ब्रह्मलोक में उसका फल मिलता है जो उसके कर्म मुक्ति का कारण होता है। चौथे प्रश्न में स्वप्नावस्था का वर्णन करते हुए बतलाया गया है की आत्मा का सोपाधिक स्वरुप ही द्दष्टा, श्रोता, विज्ञाता, आदि है, इसका अधिष्ठान परब्रम्हा है। उस ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर उसे पुरुष की प्राप्त हो जाती है। पाँचवें प्रश्न के उत्तर में कहा गया है की ब्रह्म का प्रतीक रूप ओंकार की उपासना है और इसका जप करने से भिन्न – भिन्न फलों का निरुपण होता है। अंतिम प्रश्न के उत्तर में मुक्तावस्था में प्राप्त होने वाले निरुपाधिक ब्रह्म का वर्णन है। (प्रश्नोंपनिषद्, 1992)

पाचवां भाग मुंडकोपनिषद् : इस उपनिषद में ब्रह्मा द्वारा अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को को ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया गया है। इसमें याज़िक अनुष्ठान तथा कर्म काण्ड की हीनता का प्रदिपादन करते ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है और इसे सत्य के रूप में भी स्वीकार किया गया है – "सत्यमेव जयति नानृतं " (मुंडकोपनिषद् 3 मुंडक, प्रथम खंड 06) अर्थात् "सत्य की जीत होती है झूठ की नहीं। परमात्मा सत्य स्वरुप है अतः इनकी प्राप्ति का साधन सत्य अनिवार्य तत्व है। ये पंक्ति 'सत्यमेव जयते' भारतीय न्यायलयों में भी अंकित है। सत्य और ईश्वर के चुनाव में भी सत्य की प्राथमिकता इसलिए दी जाती है की सत्य में ही ईश्वर का समावेश होता है।

छठा भाग मान्डूक्योपनिषद् : इस ग्रंथ में चार प्रकरण है। आगम, वैतथ्य, अद्वैत और अलातशान्ति प्रकरण है। इनमे आगम प्रकरण के द्वारा जगत् की उत्पत्ति के अनेक प्रयोजनों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त चैतन्य की चार अवस्थाओं –जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा चैतन्य का भी का विवेचन किया गया है। इसके साथ आत्मा के विभिन्न रूपों का भी वर्णन है।

सातवाँ भाग तैत्तिरीयोपनिषद् : इस उपनिषद में आचार्य का अपने शिष्य को दिए गए अनुशासनात्मक उपदेशों का वर्णन किया गया है। इसके साथ –साथ ब्रह्म विद्या, चित्त शुद्धि, गुरुकृपा उपासना प्रकार, शिष्य – आचार्य संबंधी शिष्टाचार तथा शिक्षा के उच्चादर्शों के सद्विचार का विवेचन है।

इस उपनिषद के प्रमुख सद्विचार इस प्रकार हैं –

- "सत्यंवद / धर्म चर / स्वाध्यायान्मा प्रमदः" (तैत्तिरीयोपनिषद्, 1993, 11 वाँ अनुवाक)। अर्थात् सदा सत्य बोलो / धर्म का आचरण करो/ स्वाध्याय से कभी मत चूको।
- "मातृदेवो भव/पितृदेवो भव/आचार्यदेवो भव/ अतिथि देवो भव। "(तैत्तिरीयोपनिषद् -,1993, 11 वाँ अनुवाक) अर्थात माता को देवतुल्य समझो/ आचार्य को देवतुल्य समझो/अतिथि को देवतुल्य समझो।
- अन्न का अनादर ना करो।
- सत्यपुरुषों के उच्च आचरण का अनुसरण करो।

आठवाँ भाग ऐतरेयोपनिषद् : इसमें "प्रज्ञान" (ब्रह्मज्ञान) की विशेष महिमा बताई गई है। इसमें कहा गया है की जिसने 'प्रज्ञान स्वरूप' परम् तत्व को जान लिया वह शरीर त्याग कर सदा के लिए जन्म और मृत्यु के बंधन से छूट जाता है। मानव शरीर को परमात्मा की प्राप्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन स्वीकार किया गया है, जिसमें गुरुकृपा को ईश्वर साक्षात्कार के लिए विशेष साधन निरुपित किया गया है। (ऐतरेयोपनिषद्, 1995)

नौवां भाग छान्दोग्योपनिषद्

यह उपनिषद उपासना और ज्ञान का 'समुच्चय' है। इसके मुख्य आदर्श इस प्रकार है।

- मनुष्य को आचार संबंधी नियमों की उपेक्षा तब ही करनी चाहिए जब उसके बिना प्राण रक्षा का कोई दूसरा उपाय ना हो।
- उत्कृष्ट विद्या ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी अन्य से भी ग्रहण करने योग्य है।
- व्यक्ति को अपने कर्तव्य को कर्मों का उचित रीति से पालन करना आवश्यक है। (छान्दोग्योपनिषद्, 2042)

दसवाँ भाग बृहदारण्यकोपनिषद् : यह उपनिषद आकार में बहुत बड़ा है। इसका अध्ययनाध्यापन अरण्य अर्थात् वन में होने के कारण इसका नाम बृहदारण्यक पड़ा। इसमे याज्ञवल्क्य एवं मैत्रीयी के रोचक संवाद द्वारा यह समझाया गया है की संसार में प्रत्येक व्यक्ति को कोई वस्तु अथवा प्राणी किसी अन्य व्यक्ति के लिए नहीं, - अपितु स्वयं अपनी अंतरात्मा के लिए ही प्रिय होते है। अतः आत्मा का ही श्रवण, दर्शन एवं मनन करना चाहिए। इसके साथ यह भी

कहा गया है की पृथ्वी समस्त प्राणियों के लिए मधुर एवं प्रिय स्थान है तथा पृथ्वी के लिए भी सभी प्राणी पुत्रवत्, मधुर एवं प्रिय है। अंत में यह भी कहा गया है की समस्त पृथ्वी पर व्याप्त अमृतमय और चैतन्यरूप विराट पुरुष अर्थात् परमात्मा तथा शरीर में विद्यमान चेतन पुरुष अर्थात् जीवात्मा दोनों एक ही है। आत्मा वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप ही है। (बृहदारण्यकोपनिषद्, 2048)

ग्यारहवाँ भाग कैवल्योपनिषाद् : इस उपनिषद में कैवल्य प्राप्ति के लिए साधना को महत्व प्रदान किया गया है। साधना के लिए तीन महत्वपूर्ण योग, श्रद्धा योग, भक्ति योग, ध्यानयोग योग की विशेषता बतायी गयी है। इसमे आत्मनियंत्रण के लिए आत्मचिंतन को आधार माना गया है। महावाक्यार्थ के द्वारा शिव को परम तत्व के रूप में निरूपित किया गया है। (वेद पारिजात, 2011)

बारहवाँ भाग श्वेताश्वतरोपनिषद् : इस उपनिषद में परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है की एकमात्र प्रकाश –रूप परमात्मा ही सभी पदार्थों में छिपा हुआ है। यह सभी पदार्थों को व्याप्त करने वाला, सभी पदार्थों में निवास करने वाला, सभी पदार्थों को देखने वाला, ज्ञान देने वाला, उपाधिरहित और त्रिगुणातीत है – जो सतत्व, रज, तम इन तीनों गुणों से रहित है। (वेद पारिजात, 2011)

निष्कर्ष : अतः निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं की वेदों तथा उपनिषद में निहित मूल्यशिक्षा वह ज्ञानदीपक है जो सृष्टि को आदिकाल से ही प्रकाशित कर रहा है। वेदों से हमें यह ज्ञात होता है की इस दुनिया में हमें कैसे रहना चाहिए, किस तरह से खान-पान होना चाहिए, कैसा आचार – विचार होना चाहिए एवं हमारी उपासना पद्दति किस प्रकार की होनी चाहिए। वेदों में आत्मा, ब्रह्मांड और जीवित प्राणियों के बीच एक गहरा संबंध होता है जिसमें सभी सांसारिक समस्याओं के उत्तर निहित होते हैं। वेद जीवन को जहां अर्थ देते हैं वहीं उपनिषद भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं दर्शन ही नहीं अपितु समग्र मानव सभ्यता की अमूल्य धरोहर हैं। इनके द्वारा सद्चित् आनंद की प्राप्ति ही परम ध्येय है। लेकिन वर्तमान में हम में से अधिकांश लोग अपनी परंपरा और विरासत के रूप में वेद ओर उपनिषद् के प्रति उदासीन रवैया रखते हैं, जो चिंताजनक है। अब समय आ गया है की भारतीय संस्कृति के ऐसे अव्यक्त हिस्से को अपनाया जाए और जीवन को मूल्यपरक बनाया जाए।

संदर्भ–सूची :

1. "वेद पारिजात" (14 . 09 . 11), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
2. कुमार विजय, गोबिन्दराम, हसानंद, volume-8
3. विद्यालंकार निष्ठा डॉ, जागरण, एडिटोरीअल पेज, Thu, 24 Jan 2013 03:23 AM (IST)
4. https://nios.ac.in ›hindustani_music_242_hindi
5. जालान घनश्यामदास (1997), ईशावास्योपनिषद् - मंत्र -1, गीतप्रेस, गोरखपुर, तीसरा संस्करण।
6. जालान घनश्यामदास(1992), केनोपनिषद् – श्लोक 1.1, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण।
7. जालान घनश्यामदास (1992), प्रश्नोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण।
8. जालान घनश्यामदास (2008), कठोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, षष्ठ संस्करण - अध्याय 1, वल्ली 2, मंत्र 1.
9. जालान घनश्यामदास (1992), मुंडकोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण।
10. जालान घनश्यामदास (2042), मांडूक्योपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।
11. जालान घनश्यामदास (1993), तैत्तिरीयोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।
12. जालान घनश्यामदास (1995), ऐतरेयोपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, द्वितीय संस्करण।
13. छान्दोग्योपनिषद् (2042), गीताप्रेस गोरखपुर, आठवाँ संस्करण।
14. बृहदारण्यकोपनिषद् (2058), गीताप्रेस गोरख-पुर, नवाँ संस्करण।

•